 ISSN 976-8645

रामायण में पारिवारिक सज़्बन्ध

डॉ. राधावल्लभ शर्मा[३५८]

सत्त्वगुण सज़्पन्न मनोभूमि में सद्भाव और सदाशयता का सञ्चार स्वत: तरङ्गित रहता है, मानवीय अन्त:करण में अनन्त भावों का सञ्चार यथा-संस्कार और यथाचरित्र होता है। भावों के बिना हृदय काष्ठपाषाणवत् तथा भावोद्रेक से काष्ठपाषाण भी प्राणमय हो जाते है। यही कारण है कि भारतीयसंस्कृति में पत्थर की मूर्ति के सज़्मुख उपासक अपने हृदयोद्गार प्रकट करता हुआ आश्वस्त होता है कि प्राणप्रतिष्ठित यह मूर्तिविग्रह मेरी प्रार्थना और विनय को सुन रहे है। यही हार्दिक सद्भाव जीवन को आनन्दमय, रसमय बनाते है तथा यदि ये ही दुर्भावों में परिणत होते हैं तो प्रत्यक्ष नरक का अनुभव कराते है अर्थात् पारस्परिक सद्भाव सज़्बन्ध ही स्वर्ग एवं दुर्भावयन्त्रणा ही नरक है। भावों की यह सात्त्विक और तामसिक श्रेणियाँ ही परस्पर मानवीय सज़्बन्धों के स्तर को निर्धारित करती है एक ओर स्नेह, प्रेम, सहयोग, समर्पण है तो दूसरी ओर ईर्ष्या, द्वेष, विरोध, असहयोग है। इन श्रेणियों के न्यूनाधिक्य से ही पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं विश्वस्तरीय पारस्परिक सज़्बन्धों का सृजन होता है जो शान्ति, अशान्ति, प्रेम, सहयोग का निर्धारण करता है। उक्त विषय अत्यन्त प्रासङ्गिक है, क्योंकि भारत जैसे संयुक्त परिवार संस्कृति प्रधान देश में परिवार शब्द का अर्थसंकोच एवं पारिवारिक संस्कृति का विनाश सर्वत्र दृग्गोचर होता है।

संगठित परिवार के बिना समाज नहीं हो सकता एवं संगठित समाज के बिना सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण असज़्भव है। संयुक्त परिवार प्रथा भारतीयसंस्कृति की जीवन्त विशेषता है, जिसके अभाव में हमारा जीवन एक सूखी नदी के समान रह गया है, जिसमें मात्र रेत, शंख, सीपी और कङ्कर बचे है अत: परिवार प्रणाली के आदर्श स्वरूप को यदि हम पुन:स्थापित करना चाहते है तो हमें रामायण में वर्णित पारस्परिक सज़्बन्धों की ओर देखना होगा। जहाँ पुत्र के वियोग में पिता प्राणों को त्याग रहे हैं।

दूसरी ओर पुत्र पिता की आज्ञा में राजसिंहासन की तरफ बढ़ते हुए कदमों को रोककर वन की ओर गमन कर रहे हैं। पिता पुत्र का यह अद्भुत पारस्परिक सज़्बन्ध कितना सजीव एवं हृदयग्राह्य है।

रामायण के अयोध्याकाण्ड में श्रीराम कहते है-

पित्रर्थे जीवितं दास्ये पिबेयं विषमुल्वणम्।
सीता त्यक्ष्येऽथ कौशल्यां राज्यं चापि त्यजाज़्यहम्।।[1]

पिताजी के लिए मैं जीवन दे सकता हूँ, भयङ्कर विष भी पी सकता हूँ, सीता, कौशल्या तथा राज्य को भी छोड़ सकता हूँ।

पितृप्रेम के ऐसे उदाहरण कम ही देखने को मिलते है। पुत्र का मातृप्रेम तो स्वाभाविक होता है। परन्तु पितृप्रेम यथावसर ही प्राप्त होता है। पिता-पुत्र के उदात्त दिव्य सज़्बन्धों की प्रासङ्गिकता वर्तमान में स्वत:सिद्ध है। भाइयों के सज़्बन्धों की ओर दृष्टिपात करें तो भरत श्रीराम को मनाने के लिए चित्रकूट पहुँच कर उन्हें राज्यसिंहासन पुन: स्वीकार करने के लिए हठ करते है। दूसरी ओर श्रीराम पिता की आज्ञा को सर्वोपरि

---

[358] सहायकाचार्य (साहित्य),राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, वेदव्यास परिसर, बलाहर (हि. प्र.)

मानकर भरत को ही राज्यसंचालित करने हेतु निर्देशित कर रहे है। वर्तमान में पैतृकसज़्पत्ति के लिए भाई, भाई के खून का प्यासा है उक्त प्रसङ्ग भाइयों के पारस्परिक सज़्बन्ध का उदात्त परिष्कृत एवं अनुकरणीय दृष्टान्त है।

माता कैकेयी तथा श्रीराम का प्रेम तो इतना निश्चल, पवित्र एवं विश्वासयुक्त है कि माँ कैकेयी कुब्जा मंथरा के बहकाने पर भी राम की प्रशंसा करती नही अघाती। वे कहती है।– **कुब्जे तू राम के राज्याभिषेक का शुभ संवाद सुनकर जलती क्यों है ? मेरे लिए जैसे भरत आदर के पात्र है, वैसे ही बल्कि उससे भी बढ़कर श्रीराम आदरणीय है। वे अपनी सगी माता कौसल्या से भी बढ़कर मेरी सेवा करते है यदि राम को राज्य मिल रहा है तो उसे भरत का भी समझ ले।''** (2, 3)

भक्त और भगवान् का पारस्परिक सज़्बन्ध तो रामायण का प्राण है जब हनुमान जी लङ्का से सीता जी का पता लगाकर लौटते है, उस समय उनसे मिलकर भगवान् बड़े प्रसन्न होते है। और उनके कार्यो की भूरि–भूरि प्रशंसा करते हुए करते है–**आज हनुमानजी ने सीता का पता लगाकर मेरी, लक्ष्मण की तथा रघुवंश की रक्षा की है।** राज्याभिषेक के पश्चात् जब श्रीराम हनुमान् जी को विदा करते है, उस समय भी उनके उपकारों का स्मरण करके वे आनन्द–गद्गद हो उठते है और भावावेश में ये उद्गार प्रकट करने लगते है।

''एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।
शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्[4]।।
मदङ्गे जीर्णतां यातु यत्त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम्''।।[5]

हे कपिश्वर! आपने मुझपर ऐसे महान् उपकार किए है, उनके बदले मैं अपने प्राणतक दे सकता हूँ, हे वायुनन्दन, कभी भी आप पर कोई विपत्ति न आये, जिससे मैं अपने उपकारों का बदला चुकाऊँ, क्योंकि मनुष्य विपत्तियों में पड़ने पर ही प्रत्युपकार का पात्र बनता है। क्या सज़्बन्धों की जीवन्तता है। क्या समर्पण, क्या निष्ठा कर्त्तव्यों की उच्चकोटि की श्रेणी है।

चित्रकूट पर भरत के आगमन की सूचना मिलने पर श्रीराम ने लक्ष्मण से जो उद्गार प्रकट किया है, वह उनके अगाध भ्रातृस्नेह का प्रबल परिचायक है वे कहते है–**लक्ष्मण! मैं सत्य और आयुध की शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं धर्म, अर्थ, काम तथा सञ्पूर्ण पृथ्वी सब कुछ तुम्ही लोगों के लिए चाहता हूँ। लक्ष्मण! मैं भाइयों की भोग्यसामग्री और उनके सुख के लिए ही राज्य भी चाहता हूँ। भरत को, तुमको और शत्रुघ्न को छोड़कर यदि मुझे कोई सुख मिलता हो तो उसमें आग लग जाय, वह जलकर भस्म हो जाय''।**[6]

सास और बहु का सज़्बन्ध रामायण में इस प्रकार चित्रित है अशोक वाटिका में सीता जी विलाप करती हुई त्रिजटा राक्षसी से कह रही है कि **मैं श्रीराम, महारथी लक्ष्मण, अपने और अपनी माता के लिए भी उतना शोक नहीं करती हूँ जितना अपनी तपस्विनी सासुजी के लिए कर रही हूँ।**

''न शोचामि तथा रामं लक्ष्मणं च महारथम्।
आत्मानं जननीं चापि यथा श्वश्रूं तपस्विनीम्।।''[7]

नागपाश में बँधे हुए अपने भाई लक्ष्मण को देखकर श्रीराम विलाप करते हुए कहते है–

''शक्या सीतासमा नारी मर्त्यलोके विचिन्वता।

न लक्ष्मणसमो भ्राता सचिवः साम्परायिकः।।''[8]

मर्त्यलोक में ढूँढने पर मुझे सीता जैसी दूसरी स्त्री मिल सकती है, परन्तु लक्ष्मण के समान सहायक और युद्धकुशल भाई नहीं मिल सकता। इतना दृढ़ विश्वास सम्बन्धों का, रामायण के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है।

इस प्रकार रामायण के पारस्परिक सम्बन्धों की गहनता, उनका समर्पण भाव, कर्तव्यपालन इत्यादि भारतीय संस्कृति की अनुपम देन है। संयुक्त परिवारों का मूल स्रोत रामायण के पारस्परिक सम्बन्ध है, चाहे वह पिता-पुत्र का हो या पति और पत्नी का, भाई और भाई का हो या भक्त और भगवान का। परस्पर सम्बन्धों की उदारता एवं मिलनसारिता ही आपस में एकजुट होकर मन के मिलने का एकमात्र उपाय है। वर्तमान में हम सब यदि रामायण में वर्णित सम्बन्धों के आदर्शों, उनके कर्त्तव्यों को अपनाये तो पारस्परिक कलह, पति पत्नी का वैर, तलाक, विवाहविच्छेद, भूमि एवं सम्पत्ति के लिए विवाद इन सब अनावश्यक तत्त्वों से बचा जा सकता है। इसीलिए आज के इस भौतिकयुग में पाश्चात्य जीवनशैली तथा विचारों को त्यागकर आदि काव्य रामायण के सिद्धान्तों का तत्वबोध कर, उन्हें आत्मसात् कर, उन्हें अपनाकर हम शान्ति, सुख, सदाचार, व्यवहार, प्रेम, त्याग, समर्पण, भक्ति, सदाशयता तथा संस्कृति को प्राप्त कर सकते है। यही भारतीय संस्कृति है यही सत्य है, यही शाश्वत है, जीवन्त है, यही प्राण है।

सन्दर्भ

1. वाल्मीकि-रामायण अयोध्याकाण्ड-(3.5.9.60)
2. ''संतप्यसे कथं कुब्जे श्रुत्वा रामाभिषेचनम्।।
   यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः''।। (तत्रैव 8.15.18)
3. कौसल्या तोऽतिरिक्तं च स तु शुश्रूषते हि माम्।
   राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत्तदा''।। (तत्रैव 8.15.19)

4.,5. वाल्मीकि-रामायण उत्तरकाण्ड (23/24)

6. धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण।
   इच्छामि भवतामर्थं एतत्प्रतिश्रृणोमि ते।।
   भ्रातृणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्ष्मण।
   राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुधमालभे।।
   वह्निना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं वापि मानद।
   भवेन्मम सुखं किञ्चित् भस्म तत्कुरुतां शिखी।। उत्तरकाण्ड (2.97.5.6.8)
7. युद्ध काण्ड (49.20.21)
8. तत्रैव (54.28)